प्राकृत एवं अपभ्रंश जैन साहित्य में कृष्ण

राम और कृष्ण ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो युगों-युगों से भारतीय जनमानस के श्रद्धा के केन्द्र रहे हैं। इन दानों व्यक्तित्वों के जीवन चरित्रों ने भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति को बहुत अधिक आन्दोलित और प्रभावित किया है। वैष्णवधर्म के उद्भव एवं भक्तिमार्ग के विकास के साथ ये दोनों व्यक्तित्व अधिकाधिक जनश्रद्धा के केन्द्र बनते चले गए। इनके जीवन वृत्तों पर रचित रामायण, महाभारत और भागवत भारतीय परम्परा के ऐसे ग्रन्थ हैं, जो सभी भारतीय लोक भाषाओं में अनुदित हैं और भारतीय जनसाधारण के द्वारा अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति के साथ पढ़े व सुने जाते हैं। साहित्यिक रुझान की दृष्टि से राम के चरित्र की अपेक्षा भी कृष्ण का चरित्र पूर्व मध्य काल में अधिक प्रभावी रहा है। राम के चरित्र को अधिकाधिक लोकव्यापी बनाने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस को है। राम सदाचार सम्पन्न, सन्मार्ग संरक्षक एक वीर पुरुष हैं, जबकि कृष्ण एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। वे एक नटखट बालक, रसिक युवा, धर्म और समाज के संरक्षक वीर पुरुष, कुशल राजनेता तथा धर्म एवं अध्यात्म के उपदेष्टा प्रज्ञा पुरुष सभी कुछ हैं। उनके जीवन के इस बहुआयामी स्वरूप ने उन्हें अधिक प्रभावी बना दिया है।

अर्धमागधी आगम साहित्य में कृष्ण

जहां तक जैन परम्परा का प्रश्न है, उसने राम और कृष्ण दोनों के कथानकों को अपने में आत्मसात करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि जैन परम्परा में विमलसूरि के पउमचरियं (प्राकृत), जिनसेन के पद्मपुराण (संस्कृत), रविषेण के पद्मचरित (संस्कृत) एवं स्वयम्भू के पउमचरिउ (अपभ्रंश) के साथ-साथ राजस्थानी और हिन्दी में अनेक ग्रन्थ रामकथा पर मिलते हैं, किन्तु जैन आगम साहित्य में जितना विस्तृत विवरण कृष्णकथा का मिलता है उतना रामकथा का नहीं मिलता। जैन आगमों में राम के नाम निर्देश के अतिरिक्त उनके जीवनवृत्त का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जबकि कृष्ण के जीवनवृत्त के अनेक उल्लेख उनमें उपलब्ध हैं। जैन परम्परा में कृष्ण का जीवन चरित्र २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के जीवनचरित्र के साथ जुड़ा हाने के कारण है, उसे राम की अपेक्षा भी आगम साहित्य में अधिक स्थान मिला है। आगम ग्रन्थों में समवायांग, उत्तराध्ययन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृत्दशा, प्रश्नव्याकरण आदि आगमों में कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख हैं। आगम साहित्य में कृष्ण के चरित्र को राम के चरित्र के अपेक्षा जो प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है, उसका कारण केवल यही नहीं है कि वे जैन परम्परा के २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चचेरे भाई हैं, अपितु उनका वासुदेव (अर्द्धचक्री) होना भी है। जैन परम्परा में राम एवं कृष्ण दोनों की गणना शलाका पुरुषों में की गई है, किन्तु जहां राम को बलदेव के रूप में स्वीकृत किया गया है वहीं कृष्ण को वासुदेव के रूप में स्वीकृत किया गया है। बलदेव के अपेक्षा वासुदेव का पद निश्चय ही अधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है, क्योंकि वासुदेव शासनसूत्र का स्वयं नियामक होता है। जबकि बलदेव मात्र उसका सहयोगी । साथ ही जैन परम्परा में कृष्ण को भविष्य में होने वाले १२वें तीर्थंकर के रूप में भी स्वीकार किया गया है और यह सत्य है कि जैन परम्परा में तीर्थंकर ही सर्वोच्च व्यक्तित्व है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि राम के अपेक्षा कृष्ण ने जैनों को अधिक प्रभावित किया है।

जहां तक कृष्ण के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में विस्तृत एवं स्वतंत्र ग्रन्थ का प्रश्न है संस्कृत एवं अपभ्रंश में हरिवंश पुराण के रूप में सर्वप्रथम ऐसे स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे गये। किन्तु आगे चलकर रिट्ठनेमिचरिउ, नेमिनाहचरिउ, पदुम्नचरिउ, कण्हचरित आदि अनेक ग्रन्थ लिखे गये जिनमें कृष्ण-कथा को प्रमुख स्थान मिला है।

जैन आगम साहित्य में प्राचीनतम स्तर के अर्थात् ईस्वी पूर्व के ग्रन्थों यथा- आचारांग, ऋषिभाषित, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक में कृष्ण के जीवनवृत्त का हमें कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। ऋषिभाषित में वारिषेण कृष्ण के उपदेशों का विवरण है, किन्तु उनका देवकी पुत्र कृष्ण से सम्बन्ध जोड़ पाना कठिन है। मात्र उत्तराध्ययन सूत्र के रथनेमि (रहनेमिज्ज) नामक अध्ययन में राजीमति और रथनेमि के कथा प्रसंग में शौरीपुर नगर के वसुदेव नामक राजा की रोहिणी और देवकी नाम की रानियों के पुत्र के रूप में क्रमशः राम और केशव (कृष्ण) का उल्लेख है। इस कथा प्रसंग में केशव के द्वारा राजीमति का अरिष्टनेमि से विवाह निश्चित करने एवं अरिष्टनेमि के प्रव्रजित होने पर उन्हें शुभकामना प्रेषित करने एवं वन्दन करने का भी उल्लेख है। सम्भवतः यही एक ऐसा साहित्यिक प्राचीनतम आधार है, जहां कृष्ण जैन परम्परा में सर्वप्रथम उल्लिखित होते हैं। यद्यपि द्वितीय स्तर के आगम ग्रन्थों में अर्थात् ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी में निर्मित आगम ग्रन्थों में कृष्णकथा का धीरे-धीरे विस्तार होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। इन ग्रन्थों में समवायांग पूर्वभाग के ५४वें समवाय में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव एवं ९ वासुदेव ये ५४ उत्तम पुरुष होते हैं - मात्र यह उल्लेख है। यहां इनके नामों का भी उल्लेख नहीं है। किन्तु समवायांग के ही अंतिम भाग में बलदेवों एवं वासुदेवों के वर्तमान भव के नाम, पूर्व भव के नाम, निदान कारण और निदान नगरों के नाम तथा उनके माता-पिता, पूर्व भव के धर्माचार्य और वर्तमान भव के प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) के नाम आदि का उल्लेख है। इसी प्रसंग में नवें वासुदेव के रूप में कृष्ण का नाम आता है। कृष्ण के पिता के रूप में वसुदेव और माता के रूप में देवकी का उल्लेख यहां भी हमें प्राप्त होता है।

इसी प्रसंग में सामान्य रूप से वासुदेवों और बलदेवों की सम्पदा, शारीरिक शक्ति, व्यक्तित्व आदि का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इस चर्चा में जो महत्त्वपूर्ण उल्लेख है वह यह कि बलदेव कटिसूत्र वाले नीले कौशेयक वस्त्र को और वासुदेव कटिसूत्र वाले पीतकौषेयक वस्त्र को धारण करते हैं। इसी प्रकार यहां यह भी बताया गया है कि बलदेव हल और मूसल रूपी अस्त्रों को धारण करते हैं और वासुदेव श्रृंग, धनुष, पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदकी गदा, नन्दक खड्ग धारण करते हैं और उनका मुकुट कौस्तुभमणि से युक्त होता है। वैष्णव परम्परा में कृष्ण और बलदेव की वेशभूषा एवं आयुध आदि की जो चर्चा है उससे इस विवरण की समानता है। यद्यपि हमें स्मरण रखना चाहिए कि ये सभी उल्लेख समवायांग-सूत्र के अंतिम भाग में पाये जाते हैं जो उसके परिशिष्ट के रूप में है। इससे ऐसा लगता है कि इन्हें समवायांग में बाद में जोड़ा गया है। फिर भी वर्तमान समवायांग का जो कुछ स्वरूप है, वह ईसा की ५वीं शताब्दी में निश्चित हो गया था। अत: ये सारे विवरण उनसे प्राचीन ही हैं, परवर्ती नहीं। अत: यह मानने में हमें आपत्ति नहीं होना चाहिए कि यह समग्र विवरण हिन्दू परम्परा से प्रभावित हैं।

कृष्ण के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में आगम साहित्य में समवायांग के पश्चात् कृष्ण का जो प्राचीन उल्लेख हमें प्राप्त होता है, वह हमें ज्ञाताधर्मकथा में मिलता है। विद्वानों ने ज्ञाताधर्मकथा को लगभग ईसा की द्वितीय शताब्दी के आसपास की रचना माना है। ज्ञाताधर्मकथा में कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख उसके शैलक एवं द्रौपदी नामक अध्ययनों में है। यद्यपि द्रौपदी नामक अध्याय का मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो द्रौपदी के पूर्वभव एवं वर्तमान भव का चित्रण है, किन्तु प्रसंगवश इसमें कृष्ण सम्बन्धी अनेक विवरण उपलब्ध हैं। विशेष उल्लेखनीय यह है कि यहां द्रौपदी

Jain Education International · For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पाँच पति होने की कथा को स्वीकारते हुए भी उसके व्यक्तित्व की चारित्रिक गरिमा को बनाये रखने के लिए उसके पूर्वभव की कथा भी जोड़ी गई । कथा का सारांश यह है कि द्रौपदी पूर्वभव में अपनी गुरुणी की आज्ञा न मानकर वनखण्ड में स्थित हो उग्र तपस्या करती है और प्रसंगवशात् वह वहां एक वेश्या को पाँच प्रेमियों के साथ क्रीड़ा करते हुए देखती है। उस समय वह यह निश्चय कर बैठती है कि यदि मेरी तपस्या का फल हो तो मुझे भी भविष्य में पाँच पतियों के साथ ऐसी क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस निश्चय (निदान) का परिणाम यह होता है कि उसे अपने वर्तमान भव में पाँच पाण्डवों की पत्नी बनना पड़ता है। इस प्रकार यहां हिन्दू परम्परा में प्रचलित द्रौपदी की कथा को अधिक सुसंगत और तार्किक बनाने का प्रयत्न किया गया है, ताकि द्रौपदी के निर्मल चरित्र को बिना खरोंच पहुँचाये ही पाँच पतियों वाली घटना को तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि यहाँ द्रौपदी और पाँच पाण्डवों को जैन धर्म का अनुयायी बताया गया है। मात्र यही नहीं नारद को असंयमी परिव्राजक के रूप में चित्रित करके जैन धर्म की अनुगामिनी द्रौपदी द्वारा समुचित आदर न देने की घटना का भी उल्लेख है। इससे ऐसा लगता है कि ज्ञाताधर्मकथा के इस कथा प्रसंग की रचना के समय तक जैन संघ में धार्मिक कट्टरता का प्रवेश हो चुका था क्योंकि जहां जैन परम्परा के प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थ ऋषिभाषित में देवनारद को अर्हत्ऋषि कहकर सम्मानित ढंग से उल्लिखित किया गया है वहां इस कथा-प्रसंग में नारद को असंयमी, अविरत और कलहप्रिय तथा पद्मनाभ के साथ मिलकर द्रौपदी के अपहरण की योजना बनाने वाला कहा गया है। उल्लेखनीय यह भी है कि इस नारद को कडच्छुप नारद कहा गया है। यद्यपि यह विवादास्पद ही है कि ऋषिभाषित के देवनारद और ज्ञाता के कडच्छुप नारद एक ही व्यक्ति हैं या अलग-अलग, यह कहना कठिन है।

द्रौपदी के इस कथा प्रसंग में प्रसंगवश पांचों पाण्डवों, कुन्ती और श्रीकृष्ण का उल्लेख भी है। कथा के अनुसार द्रौपदी का पद्मनाभ द्वारा अपहरण हो जाने पर पाण्डव चिन्तित होते हैं तथा द्रौपदी को खोजने में श्रीकृष्ण को ही समर्थ मानकर अपनी माता कुन्ती को श्रीकृष्ण के पास भेजकर द्रौपदी की खोज के लिए उनसे निवेदन करते हैं। इसमें कुन्ती को कृष्ण की पितृभगिनी कहा गया है। कृष्ण कुन्ती को आश्वस्त करते हैं कि मैं द्रौपदी की खोज करूंगा। वे नारद से द्रौपदी के अपहरण की घटना की जानकारी प्राप्त करते हैं तथा पाण्डवों को यह संदेश देते हैं कि वे पूर्व दिशा में गंगा नदी और समुद्र के संगम स्थल पर ससैन्य तैयार होकर पहुँचें । कृष्ण स्वयं भी ससैन्य वहां पहुँचकर लवण समुद्र के मार्ग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डवों के साथ पद्मनाभ की राजधानी अमरकंका पहुँचते हैं। इसी प्रसंग में पद्मनाभ के पास दूत का भेजना, पद्मनाभ से युद्ध में पाण्डवों का पराजित होना, अन्त में श्री कृष्ण द्वारा पद्मनाभ को पराजित करना और द्रौपदी को वापस प्राप्त करने के उल्लेख हैं। इस कथा प्रसंग में श्री कृष्ण के पुरुषार्थ और पराक्रम के चर्चा के साथ-साथ यह भी उल्लेख हुआ है कि द्रौपदी सहित पांचों पाण्डव और श्रीकृष्ण जब वापस आते हैं तब पाण्डव नौका द्वारा पहले गंगा पार कर लेते हैं, किन्तु गंगा पार करने के लिए श्री कृष्ण को वापस नौका नहीं भेजते हैं। फलत: वे गंगा नदी को तैरकर पार करते हैं और पाण्डवों पर कुपित हो उन्हें देश निर्वासन की आज्ञा देते हैं। पाण्डव कुन्ती के पास पहुँचते हैं और सारी घटना उसे सुनाते हैं। कुन्ती पुन: कृष्ण के पास पहुँचती है और श्री कृष्ण से अपने पुत्रों के देश निर्वासन की आज्ञा को वापस लेने की प्रार्थना करती है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वासुदेव के वचन मिथ्या नहीं होते, अत: देश निर्वासन की आज्ञा वापस लेना सम्भव नहीं है। अन्त में वे पाण्डवों को दक्षिण दिशा में जाकर समुद्र के किनारे पाण्डु-मदुरा नामक नगर बसाकर वहां रहने का आदेश देते हैं। यद्यपि यहां कुछ भौगोलिक असंगतियाँ परिलक्षित होती हैं- प्रथम तो यह कि दक्षिण-मदुरा (मदुराई) दक्षिण में होकर भी समुद्र के किनारे नहीं है, दूसरे पूर्वीय समुद्र तट से लौटते हुए मार्ग में गंगा का पड़ना आवश्यक नहीं है।

प्रस्तुत कथा-प्रसंग श्रीकृष्ण को पाण्डवों का मित्र एक शूरवीर योद्धा तथा दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के स्वामी के रूप में चित्रित करता है। विशेषता यह है कि यहां पर श्रीकृष्ण और पाण्डवों के चरित्र के प्रसंग में महाभारत के युद्ध का कोई उल्लेख नहीं है। उसके स्थान पर अमरकंका में पद्मनाभ से हुए युद्ध का चित्रण है, समानता मात्र यह है कि दोनों ही युद्धों का कारण द्रौपदी है। जहां तक मेरी जानकारी है हिन्दू परम्परा में कृष्ण चरित्र के चर्चा प्रसंग में कहीं भी अमरकंका के पद्मनाभ के साथ उनके युद्ध का कोई उल्लेख नहीं है। मात्र यही नहीं श्रीकृष्ण का पाण्डवों पर कुपित होना, उन्हें देश निर्वासन की आज्ञा देना आदि प्रसंग भी अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि ज्ञाताधर्मकथा में कृष्ण के जीवन प्रसंग के उल्लेख महाभारत एवं श्रीमद्‌भागवत में कृष्ण के जीवन चरित्र के उल्लेखों से अनेक दृष्टि से भिन्न और प्राचीन हैं।

ज्ञाताधर्मकथा के ही पांचवें शैलक नामक अध्ययन में थावच्चापुत्र के दीक्षित होने के प्रसंग में श्री कृष्ण, उनकी राजधानी द्वारिका और उनके परिवार का उल्लेख उपलब्ध होता है। उसमें बताया गया है कि द्वारिका नगरी पूर्व-पश्चिम में १२ योजन लम्बी और उत्तर-दक्षिण में ९ योजन चौड़ी थी। यह कुबेर की मति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से निर्मित हुई थी । इन्द्र की नगरी अलकापुरी के समान जान पड़ती थी। इस नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशानकोण में रैवतक (गिरनार) पर्वत था तथा रैवतक पर्वत और द्वारिका के बीच में नन्दनवन नामक उद्यान था। इस द्वारिका नगरी में कृष्ण नामक वासुदेव राजा राज्य करते थे। इस नगर में समुद्रविजय आदि दस दशार्ह, बलदेव, आदि पांच महावीर, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धा, वीरसेन आदि एक्कीस हजार पराक्रमी, महासेन आदि छप्पन हजार बलवान पुरुष, रुक्मिणी आदि बत्तीस हजार रानियां, अनंग सेना आदि अनेक गणिकाएं बहुत से ईश्वर (धनाढ्य सेठ), तलवर (कोतवाल), सार्थवाह आदि निवास करते थे। उन कृष्ण वासुदेव का उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा तीनों दिशाओं में लवण समुद्र पर्यन्त शासन था। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन मात्र कृष्ण के पारिवारिक एवं राजकीय वैभव का चित्रण करता है। यद्यपि इस अध्ययन में दो अन्य प्रमुख घटनाएं कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित हैं - प्रथम तो यह कि कृष्ण को जब यह ज्ञात होता है कि अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारिका के बाहर उद्यान में पधारे हैं तो वे अपने समस्त राज्य परिवार के साथ उनके दर्शन को जाते हैं तथा उपदेश सुनते हैं। अरिष्टनेमि के उपदेश से थावच्चा नामक गाथापत्नी के पुत्र को वैराग्य उत्पन्न होता है। कृष्ण उसके वैराग्य की परीक्षा करते हैं तथा अत्यंत वैभवशाली अभिनिष्क्रमण महोत्सव का आयोजन करते हैं। वैसे इस अध्याय में श्री कृष्ण की राज्य सम्पदा तथा उदारवृत्ति का परिचय तो मिलता है किन्तु उनके जीवन प्रसंगों का कोई उल्लेख नहीं है ।

जैन आगम साहित्य में एक अन्य ग्रन्थ प्रश्नव्याकरणसूत्र में भी कृष्ण के राज्य और परिवार का विस्तार से वर्णन किया गया है। ज्ञाताधर्मकथा के शैलक अध्ययन में वर्णित कृष्ण के राज्य और परिवार के विवरण से प्रश्नव्याकरण के विवरण की तुलना करने पर हमें कुछ नवीन सूचनाएं प्राप्त होती हैं। इसमें कृष्ण की सोलह हजार रानियों का उल्लेख है। प्रश्नव्याकरण का यह विवरण ज्ञाताधर्मकथा के विवरण से इस अर्थ में विशेषता रखता है कि यहां कृष्ण के जीवन के संदर्भ में हिन्दू परम्परा में उल्लिखित अनके घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इसमें कृष्ण के द्वारा मुष्टिक और चाणूर नामक मल्लों का, रिष्ट नामक दुष्ट बैल का, कालिया नामक नाग का, यमुनार्जुन नामक राक्षस का, महाशकुनि और पूतना नामक दो विद्याधारियों का तथा कंस और जरासंध नामक दो शक्ति सम्पन्न राजाओं का संहार करने का उल्लेख मिलता है। प्रश्नव्याकरण में कृष्ण का यह जीवन-वृत्त विस्तृत रूप में उपलब्ध है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण के जीवन प्रसंगों के सन्दर्भ में अधिक विस्तृत चर्चा करने वाले जैन आगम ग्रन्थों में अन्तकृत्दशा महत्त्वपूर्ण है। यहां स्मरणीय है कि वर्तमान में उपलब्ध अन्तकृत्दशा की विषयवस्तु पर्याप्त रूप से परिवर्तित हो गई है, क्योंकि अन्तकृत्दशा की विषयवस्तु के सन्दर्भ में स्थानांग, समवायांग, नन्दीसूत्र, तत्त्वार्थराजवार्तिक, समवायांगवृत्ति, नन्दीचूर्णि एवं अंगप्रज्ञप्ति में जो उल्लेख हैं, उनमें परस्पर भिन्नता है और अन्तकृत्दशा की वर्तमान विषयवस्तु से पूर्णत: मेल नहीं खाते। अन्तकृत्दशा में कृष्ण और उनके परिजनों का उल्लेखयुक्त जो विवरण उपलब्ध हुआ है वह ईसा की छठी शताब्दी से अधिक परवर्ती नहीं माना जा सकता। क्योंकि नन्दीसूत्र में अन्तकृत्दशा के आठ वर्गों के और नन्दीचूर्णि में प्रथम वर्ग के दस अध्ययन होने का उल्लेख है जो कि वर्तमान अन्तकृत्दशा के विषयवस्तु से समानता रखता है। समवायांगवृत्ति में भी इसके वर्तमान स्वरूप का उल्लेख प्राप्त हो जाता है। अत: नन्दी, नन्दीचूर्णि और समवायांगवृत्ति के पूर्व ही इसको यह स्वरूप प्राप्त हो गया था । ऐसी स्थिति में इसे छठी या सातवीं शताब्दी से अधिक परवर्ती नहीं कहा जा सकता। अन्तकृत्दशा के आठ वर्गों में प्रथम पांच वर्ग और उनके उनपचास अध्ययन श्रीकृष्ण और उनके परिजनों से सम्बन्धित हैं। प्रथम वर्ग में गौतम, समुद्रसागर, अक्षोभ आदि दस व्यक्तियों का वर्णन है। इन सबके पिता अन्धकवृष्णि और माता धारिणी बताये गए हैं। अन्धकवृष्णि कृष्ण के दादा होते हैं। अत: इस आधार पर ये सभी कृष्ण के चाचा कहे जा सकते हैं।

दूसरे वर्ग में आठ अध्याय हैं। उनमें से सागर, समुद्र, अचल और अक्षोभ ये चार नाम पूर्व वर्ग में भी आये हैं। शेष चार नाम हिमवन्त, धरण, पूर्ण और अभिचन्द नवीन हैं। इन्हें भी अन्धकवृष्णि का पुत्र कहा गया है। इस प्रकार ये सभी कृष्ण के चाचा माने जा सकते हैं । इन दोनों वर्गों में केवल इन सबके अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होकर तप साधना करने का उल्लेख है। अन्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। तृतीय वर्ग में तेरह अध्ययन हैं। इन अध्ययनों में से प्रथम छ: अध्ययन अनियसेन, अनन्तसेन, अनहित, विद्धुत, देवयश ओर शत्रुसेन से सम्बन्धित हैं। ये सभी कुमार भद्दिलपुर निवासी सुलसा नामक गाथा पत्नी के पुत्र कहे गये हैं। किन्तु इसी वर्ग के आठवें अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी सुलसा के पालित पुत्र थे। वस्तुत: ये सभी देवकी और वसुदेव के ही पुत्र हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के सहोदर थे। इनका पालनपोषण क्यों और किसप्रकार सुलसा के द्वारा हुआ यह चर्चा हम बाद में गजसुकुमाल की कथा के प्रसंग में करेंगे । इन छहों के अतिरिक्त कृष्ण के अन्य सहोदर गजसुकुमाल का भी विस्तृत वर्णन इस वर्ग में है। गजसुकुमाल के जीवनवृत्त की चर्चा हम आगे स्वतंत्र रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में करेंगे। इस वर्ग में अन्य जिन व्यक्तियों का उल्लेख है उनमें सारन, दारुक और अनाधृष्टि भी हैं जो वसुदेव और धारिणी के पुत्र थे और इसप्रकार वे भी अन्य माता से उत्पन्न श्रीकृष्ण के ही भाई थे। अन्य व्यक्तियों में सुमुख, दुर्मुख और कूपदारक ये तीन बलदेव के पुत्र थे और ये तीनों श्रीकृष्ण के भतीजे थे। इस प्रकार तीसरे वर्ग में कृष्ण के दस भाइयों और तीन भतीजों का उल्लेख है। चतुर्थ वर्ग में जो दस अध्ययन हैं उनमें जालि, मयालि, उपालि, पुरुषसेन और वायुसेन ये पांच वसुदेव और धारिणी के पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार ये भी श्रीकृष्ण के भाई थे। प्रद्युम्न और शाम्ब ये दो कृष्ण के पुत्र थे। यद्यपि इनमें प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी और शाम्ब की माता जाम्बवंती थीं। अनिरुद्ध कुमार को प्रद्युम्न और वैदर्भी का पुत्र बताया गया है। इस प्रकार अनिरुद्ध कृष्ण के पौत्र हैं। सत्यनेमि और दृढ़नेमि समुद्रविजय और शिवादेवी के पुत्र कहे गये हैं। अत: ये अरिष्टनेमि के सहोदर और श्री कृष्ण के चचेरे भाई कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार चौथे वर्ग में कृष्ण के दो चचेरे भाई, पांच भाई, दो पुत्र और एक पौत्र का उल्लेख है। पांचवें वर्ग में १. पद्मावती २. गौरी ३. गान्धारी ४. लक्ष्मणा ५. सुसीमा ६. जाम्बवंती ७. सत्यभामा और ८. रुक्मिणी - इन आठ कृष्ण की पटरानियों एवं मूलश्री एवं मूलदत्ता नामक दो पुत्रवधुओं का उल्लेख है। ये सभी रानियाँ द्वारिका के विनाश की भविष्यवाणी सुनकर अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने का निर्णय करती हैं और श्रीकृष्ण समारोह पूर्वक उन्हें प्रवज्या ग्रहण करवाते हैं । इनमें मूलश्री और मूलदत्ता कृष्ण और जाम्बवंती के पुत्र शाम्बकुमार की पत्नियां अर्थात् श्रीकृष्ण की पुत्रवधुएँ थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तकृत्दशा के प्रथम पाँच वर्ग और उनके उनपचास अध्याय श्री कृष्ण के परिवार से ही सम्बन्धित हैं। अन्तकृत्दशा में श्री कृष्ण के जिन परिजनों का उल्लेख हुआ है उनमें से अनेक तो ऐसे हैं जिनका नाम हमें हिन्दू परम्परा के अन्य ग्रन्थों में मिल जाता है। किन्तु उनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनका उल्लेख हमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। चाहे इन सभी नामों की ऐतिहासिकता विवादास्पद हो, किन्तु इससे कृष्ण और उनके परिजनों का जैन परम्परा में क्या स्थान है, यह स्पष्ट हो जाता है ।

द्वारिका के विनाश एवं श्रीकृष्ण के भावी तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

प्रस्तुत अष्टम अंग आगम श्रीकृष्ण जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कुछ नई सूचनाएं भी प्रदान करता है। इसमें द्वारिका के विनाश की कथा एक भिन्न ढंग से चित्रित की गई है। यद्यपि उस पर हिन्दू परम्परा का स्पष्ट प्रभाव भी देखा जा सकता है। अंतकृत्दशा के अनुसार श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि से द्वारिका के भविष्य के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ में प्रश्न पूछते हैं। अपने परिजनों को अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होता देखकर उनके मन में एक आत्मग्लानि उत्पन्न होती है कि मैं इस राज्य लक्ष्मी का त्याग करके प्रभु के पास प्रव्रज्यां ग्रहण करने में अपने को असमर्थ क्यों अनुभव कर रहा हूँ तथा राज्य और अन्तःपुर में गृद्ध बना हुआ हूँ। अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के इस मनोभाव को जानकर कहते हैं कि हे कृष्ण! सभी वासुदेव राजा निदान करके जन्म लेते हैं अतः उनके द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण करना सम्भव नहीं होता। यहां कृष्ण अरिष्टनेमि से अपनी मृत्यु और भावी जीवन के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं । अरिष्टनेमि उन्हें बताते हैं कि यादवकुमार मद्यपान करके जब द्वैपायन ऋषि को क्रुद्ध करेंगे, तब द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार देव होकर इस द्वारिका का विनाश करेंगे। उस समय तुम अपने माता-पिता और स्वजनों के वियोग से दुःखी होकर बलराम के साथ दक्षिणी समुद्र तट की ओर पाण्डु-मथुरा की ओर प्रस्थान करोगे। रास्ते में कौशाम्बवन उद्यान में तुम पीताम्बर ओढ़कर सोओगे। उस समय जराकुमार मृग के भ्रम में तुम पर तीर चलाएगा। उस तीर से विद्ध होकर तुम तीसरी पृथ्वी में उत्पन्न होओगे। वहां की आयु पूर्ण कर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुण्ड्र जनपद की शतद्वारा नामक नगरी में अमम नाम के बारहवें तीर्थंकर होगे (द्रष्टव्य है कि समवायांग-सूत्र में भविष्यकालीन तीर्थंकरों में अमम का नाम १३वां बताया गया है)। श्रीकृष्ण द्वारिका के विनाश और अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी सुनकर द्वारिका के निवासिओं और अपने परिजनों को अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या लेने हेतु प्रोत्साहित करते हैं। परिणामस्वरूप कृष्ण की अनेक रानियां और पुत्र-परिजन प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं ।

कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमाल की कथा

अन्तकृत्दशा में कृष्ण के सात भाईयों का उल्लेख हमें उपलब्ध होता है। जिनमें से अनियसकुमार आदि छः का पालन-पोषण भद्दिलपुर नगर के नाग नामक गाथापति की पत्नी सुलसा द्वारा होता है। कथा के अनुसार देवकी को किसी भविष्यवेत्ता ने एक सरीखे आठ पुत्रों को जन्म देने की भविष्यवाणी की थी। इस प्रकार सुलसा को भी मृतपुत्र होने की भविष्यवाणी की थी। सुलसा ने हरिणेगमेषी नामक देव की आराधना की और वह देव प्रसन्न हुआ। कथा प्रसंग के अनुसार देवकी और सुलसा साथ-साथ गर्भवती होती हैं और साथ-साथ प्रसव भी करती हैं। पुत्र प्रसव के समय वह देव सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के पास और देवकी के पुत्रों को सुलसा के पास रख देता था। इस प्रकार देवकी के प्रथम छः पुत्र सुलसा के द्वारा पालित और पोषित हुए। कालान्तर में सुलसा के ये छहो पुत्र अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हो गये। संयोग से किसी समय वे छहो सहोदर भाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवकी के गृह पर दो-दो के समूह में भिक्षार्थ आते हैं। उनके समरूप और समवयस्क होने के कारण देवकी को यह भ्रम हो जाता है कि वे ही मुनि बार-बार भिक्षा के लिए आ रहे हैं। निर्ग्रन्थ श्रमण किसी भी घर में भिक्षार्थ दूसरीबार प्रवेश नहीं करता। अतः वह तीसरे समूह में आये मुनियों से अन्त में यह बात पूछ ही लेती हैं कि क्या द्वारिका नगरी में मुनियों को आहार उपलब्ध होने में कठिनाई हो रही है जिसके कारण आपको बार-बार मेरे द्वार पर आना पड़ रहा है। मुनि वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हैं कि हम छहो भाई एक सरीखे हैं और इसी कारण आपको ऐसा भ्रम हो गया है। देवकी को अपनी भविष्यवाणी का स्मरण होता है कि मुझे एक सरीखे आठ पुत्रों की भविष्यवाणी की गई थी, किन्तु मेरी अपेक्षा यह सुलसा ही भाग्यवान है। वह अपनी इस मनोव्यथा के स्पष्टीकरण के लिए अरिष्टनेमि के पास जाती है और अरिष्टनेमि उसे बताते हैं कि ये छहो भाई वस्तुतः तुम्हारे ही पुत्र हैं। सुलसा ने तो इनका पालन-पोषण ही मात्र किया है। देवकी वापस लौटकर अत्यन्त शोकाकुल होती है और विचार करती है कि मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया किन्तु उनमें से किसी की भी बालक्रीड़ा का अनुभव नहीं कर सकी, क्योंकि छः सुलसा के द्वारा और एक नन्द और यशोदा के द्वारा पालित पोषित किये गए। देवकी यह विचार कर ही रही थी कि उसी समय श्रीकृष्ण माता के चरण वन्दन हेतु आते हैं और माता की चिन्ता का कारण पूछते हैं। देवकी सारी वस्तुस्थिति को स्पष्ट करती है। श्रीकृष्ण अपनी माता के दुःख को दूर करने के लिये तथा अपने एक और सहोदर भाई उत्पन्न होने के लिए पौषधशाला में जाकर तीन दिन का उपवास कर देव का आराधन करते हैं । देव प्रसन्न होकर कहता है कि निश्चय ही तुम्हें एक छोटा भाई प्राप्त होगा, किन्तु अल्पवय में ही वह दीक्षित हो जाएगा। कालान्तर में देवकी को पुत्र प्रसव होता है। श्रीकृष्ण अपने लघुभ्राता को युवावस्था प्राप्त होते देखकर सोमिल ब्राह्मण की कन्या सोमा से उसके विवाह का निर्णय करते हैं। दूसरी ओर द्वारिका के बाहर उद्यान में अरिष्टनेमि का आगमन होता है। अरिष्टनेमि के उपदेशों को सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य हो जाता है। माता-पिता और भाई के सांसारिक भोग भोगने के लिये अत्यन्त आग्रह के बाद भी गजसुकुमाल दीक्षित होने का निर्णय लेते हैं। श्रीकृष्ण उनका दीक्षा महोत्सव करते हैं। गजसुकुमाल दीक्षित होने के दिन ही भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार कर लेते हैं और महाकाल श्मशान में ध्यानमग्न खड़े हो जाते हैं। उधर से गजसुकुमाल का भावी श्वसुर सोमिल ब्राह्मण निकलता है, गजसुकुमाल को मुण्डित श्रमण देखकर कुपित होता है। उनके सिर पर मिट्टी की पाल बनाकर धधकते अंगारे रख देता है। गजसुकुमाल ध्यान से विचलित न होते हुए उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदना को सहन करते हैं तथा अपने मन में किसी प्रकार का द्वेष या आक्रोश नहीं लाते और उसी दिन मुक्ति को प्राप्त करते हैं। श्रीकृष्ण अपने लघुभ्राता के दर्शन के लिए अरिष्टनेमि के पास जाते हैं और उनसे सारे घटना चक्र को जानने की अपेक्षा करते हैं। अरिष्टनेमि उन्हें केवल इतना ही बताते हैं कि जिस प्रकार तुमने एक वृद्ध को सहयोग देकर दुःख मुक्त किया था उसी प्रकार तुम्हारे भाई को भी एक व्यक्ति ने सहयोग देकर संसार चक्र से मुक्त कर दिया है। इसी कथा प्रसंग में अवान्तर रूप से श्रीकृष्ण की सहयोग भावना का निम्न प्रसंग हमें मिलता है-

श्रीकृष्ण अपने लघु भ्राता गजसुकुमाल के साथ जब अरिष्टनेमि के वन्दन को जाते हैं, तो उन्हें मार्ग में ईंटों का एक बहुत बड़ा ढेर दिखाई पड़ता है। वे देखते हैं कि एक वृद्ध जो अत्यन्त जर्जर और क्षीणकाय है उस विशालकाय ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर के अन्दर रख रहा है। श्रीकृष्ण उसकी उस पीड़ा को देखकर हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाते हैं और उसके घर में डाल देते हैं। श्रीकृष्ण के साथ आनेवाला समुदाय और सैन्यबल भी उनका अनुसरण करता है और इसप्रकार अल्पसमय में ही वह विशालकाय ईंटों की राशि वृद्ध के घर पहुँच जाती है।

यहां हम देखते हैं कि अन्तकृत्दशा में वर्णित कथा प्रसंग में अनियस आदि देवकी के छह पुत्रों की सुलसा के मृत पुत्रों के साथ परिवर्तन की घटना गजसुकुमाल के जन्म और दीक्षा की कथा तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उस वृद्ध को सहयोग देने की अवान्तर कथा, ये सभी उल्लेख जैन परम्परा के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं पाये जाते। हिन्दू परम्परा में देवकी श्रीकृष्ण से पूर्व होने वाले पुत्र-पुत्रियों के जो उल्लेख हैं वे इस कथा से एकदम भिन्न हैं। फिर भी दोनों में इतना साम्य अवश्य है कि दोनों परम्पराओं में कंस के कोप से बचने के लिए देवकी पुत्रों का स्थानान्तरण हुआ है।

श्री कृष्ण के पूर्वज

वसुदेवहिण्डी में श्रीकृष्ण के पूर्व पूर्वजों की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि हरिवंश में सोरि और वीर नामक दो भाई उत्पन्न हुए। सोरि ने अपनी राजधानी सोरिकुल में स्थापित की और वीर ने सौवीर में। ये दोनों एक दूसरे के प्रति अत्यन्त अनुराग रखते थे और कोष, कोष्ठागार एवं राज्य आदि का विभाजन किये बिना ही राज्यश्री का उपभोग करते थे। सोरि के पुत्र अन्धकवृष्णि और उनकी पत्नी से समुद्रविजय आदि दस पुत्र और कुन्ती एवं माद्री नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुईं। दूसरी ओर वीर का पुत्र भोगवृष्णि हुआ। उसका पुत्र उग्रसेन और उग्रसेन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र बन्धु, सुबन्धु, कंस आदि हुए। अन्धकवृष्णि के दस पुत्रों में वसुदेव दसवें पुत्र थे। इसी प्रसंग में समुद्रविजय आदि के पूर्वभव की चर्चा की गई है। वसुदेव के पूर्व भव की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि वह पूर्वभव में नन्दिसेन था।

तुलनात्मक विवरण

जहां तक कृष्ण के माता-पिता के नाम और जन्म का प्रश्न है, जैन परम्परा और हिन्दू परम्परा में विशेष अन्तर नहीं है। दोनों ही परम्पराएँ कृष्ण को वासुदेव एवं देवकी का पुत्र मानती हैं तथा जन्म के पश्चात् यशोदा के द्वारा उनके लालन-पालन की बात भी स्वीकार करती है। दोनों परम्पराओं के अनुसार कृष्ण के अन्य सात भाइयों का उल्लेख हुआ है। किन्तु दोनों परम्पराओं में कृष्ण के अन्य भाइयों के कथानक के सम्बन्ध में अन्तर पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार बलभद्र और श्रीकृष्ण के जन्म के पूर्व देवकी के छः पुत्रों को कंस पछाड़कर मार डालता है। यद्यपि जैन ग्रन्थ वसुदेवहिण्डी में भी कंस के द्वारा देवकी के छः पुत्रों के मार डालने का उल्लेख है किन्तु जिनसेन के उत्तरपुराण तथा हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में तथा अन्तकृत्दशा के अनुसार देवकी के गर्भ से उत्पन्न ये छहो पुत्र हरिणेगमेष नामक देवता के द्वारा सुलसा के यहाँ पहुँचा दिये गये और सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के पास लाकर रख दिया जाता है। इस प्रकार जैन परम्परा मुख्य रूप से कृष्ण के सहोदर इन छः भाइयों को सुलसा के द्वारा पालित मानती है जो आगे चलकर तीर्थंकर नेमि के पास दीक्षित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार बलभद्र का देवकी के गर्भ से विष्णु के आदेश एवं योगमाया शक्ति के द्वारा रोहिणी के गर्भ में संहरण है जबकि जैन परम्परा के किसी भी ग्रन्थ में इस संहरण की घटना का उल्लेख नहीं है। बल्कि यह पाया जाता है कि बलभद्र रोहिणी के गर्भ से सहज जन्म लेते हैं। यद्यपि यहां यह स्मरणीय तथ्य अवश्य है कि जैन परम्परा में जो महावीर के गर्भ संहरण की बात कही जाती है वह मूल में कहीं बलदेव के गर्भ-संहरण की घटना से प्रभावित तो नहीं है, जिसे जैनों ने अपने अनुरूप मोड़ लिया हो। बलभद्र को कृष्ण का सहोदर भाई न मानने के कारण जैन परम्परा में कृष्ण के सात भाइयों की संख्यापूर्ति के लिए गजसुकुमाल की कथा का विकास हुआ।

श्रीकृष्ण के यशोदा के यहाँ स्थानान्तरण की बात दोनों परम्पराएं समान रूप से स्वीकार करती हैं, किन्तु जहाँ श्रीमद्भागवत में यशोदा के गर्भ से जन्मी पुत्री को, जो कि विष्णु की योगमाया का ही स्वरूप थी, कंस पटक कर मार डालने का प्रयत्न करता है, किन्तु योगमाया होने के कारण वह मृत नहीं होती है तथा आकाश में चली जाती है और काली, दुर्गा आदि की शक्ति के रूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजी जाती है वहां जैन परम्परा में वासुदेवहिण्डी और जिनसेन के उत्तरपुराण के कथनानुसार कंस उसे मारता नहीं है अपितु नाक काटकर अथवा नाक चपटी करके छोड़ देता है। यही बालिका आगे साध्वी के रूप में दीक्षित हो जाती है और अपनी ध्यानसाधना के द्वारा देव-गति को प्राप्त करती है।

किन्तु हरिवंश में जिनसेन (द्वितीय) ने यह उल्लेख किया है कि उसकी अंगुली के रक्त से सने हुए तीन टुकड़े से वह त्रिशूलधारिणी काली के रूप में विन्ध्याचल (मिर्जापुर के समीप) में प्रतिष्ठित हो जाती है। जिनसेन ने इस देवी के सम्मुख होनेवाले भैंसों के वध की भी चर्चा की है जो विन्ध्याचल में आज तक प्रचलित है। इस प्रकार जिनसेन द्वितीय ने इस कथानक को हिन्दू परम्परा के साथ जोड़ा है।

कृष्ण की बाल लीलाओं के सम्बन्ध में दोनों परम्पराएँ लगभग समान मन्तव्य रखती हैं। यद्यपि श्रीमद्भागवत के अनुसार कंस के द्वारा भेजे गये सभी असुर आदि कृष्ण या बलभद्र के द्वारा मार डाले जाते हैं, जबकि जिनसेन प्रथम तो जैनों के अहिंसा के दृष्टिकोण के आधार पर इन्हें राक्षस न कहकर देव या देवियाँ कहता है। दूसरे कृष्ण या बलदेव उन्हें मारते नहीं है अपितु हराकर जीवित ही छोड़ देते हैं। यद्यपि प्रश्नव्याकरणसूत्र के अनुसार कृष्ण के द्वारा इन्हें मारे जाने का उल्लेख है। हेमचन्द्र अपने त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित में जिनसेन के समान ही यह मानते हैं कि श्रीकृष्ण इन्हें हराकर भगा देते हैं। जहां जिनसेन प्रथम ने इन्हें देवी-देवता के रूप में स्वीकार किया है, वहीं हरिवंशपुराण में जिनसेन द्वितीय इनका कंस के द्वारा भेजे गये उन्मत्त प्राणियों के रूप में उल्लेख करते हैं।

जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके है कि जहां हिन्दू परम्परा में पाण्डवों एवं कृष्ण के जीवन के साथ महाभारत के युद्ध की घटना जुड़ी हुई है वहां जैन आगम ग्रन्थों में महाभारत की घटना का सर्वथा अभाव है। यद्यपि परवर्ती जैन लेखकों ने महाभारत की घटना का उल्लेख किया है।

जहां हिन्दू परम्परा कंस को कृष्ण के मुख्य प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चित्रित करती है वहां जैन परम्परा में कृष्ण का मुख्य प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध को माना गया है। क्योंकि वह प्रतिवासुदेव है और उस पर विजय प्राप्त करके ही कृष्ण वासुदेव के पद को प्राप्त करते हैं।

यद्यपि यादवों और द्वारका के विनाश के मूल में यदुवंशी का मद्यपायी होना दोनों ही परम्परा में समान्य रूप से स्वीकार किया गया है । फिर भी जैन परम्परा में द्वारका और यादव वंश के विनाश को कुछ भिन्न तरीके से चित्रित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। जैन परम्परा के अनुसार द्वारका और यादव वंश के विनाश की भविष्यवाणी सुनकर श्रीकृष्ण यह घोषणा करवाते हैं कि जो भी व्यक्ति अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होगा उसके परिवार के पालन-पोषण की व्यवस्था राज्य करेगा। इसी प्रसंग में कृष्ण के द्वारा अपनी आठों पत्नियों, पुत्रवधुओं आदि को अरिष्टनेमि के पास दीक्षित करवाने के भी उल्लेख मिलते हैं।

जहां तक श्रीकृष्ण की मृत्यु (लीला संहरण) का प्रश्न है दोनों ही परम्पराएँ जराकुमार के बाण से उनकी मृत्यु का होना स्वीकार करती हैं। किन्तु जहां वैष्णव परम्परा के अनुसार वे नित्यमुक्त हैं और अपनी लीला का संहरण कर गोलोक में निवास करने लगते हैं वहां जैन परम्परा के अनुसार वे अपनी मृत्यु के पश्चात् भविष्य में आगामी उत्सर्पिणी में भरतक्षेत्र में १२वें अमम नामक तीर्थंकर होकर मुक्ति को प्राप्त करेंगे - ऐसा उल्लेख है। इस प्रकार दोनों परम्पराएँ यद्यपि कृष्ण के जीवनवृत्त को अपने विवेचन का आधार बनाती हैं, फिर भी दोनों ने उसे अपने-अपने अनुसार मोड़ने का प्रयास किया है। जैसा कि हमने संकेत किया है कि श्रीकृष्ण के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ है जिनका विवरण हमें जैन ग्रन्थों में ही मिलता है, पौराणिक साहित्य में नहीं मिलता। श्री कृष्ण के पद्मोत्तर से हुए युद्ध के वर्णन तथा गजसुकुमाल के जीवन की घटना, उनका नेमिनाथ के साथ सम्बन्ध आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिनका उल्लेख हिन्दू परम्परा में या तो नहीं है या बहुत अल्प है। जबकि जैन परम्परा में इनका विस्तार से वर्णन है। इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध में जैन कथानकों का अपना वैशिष्ट्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org